 ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

अभिनय की पटकथा

डा० प्रियंका मिश्र

रसात्मक काव्यों एवं अन्य लति कलाओं के जितने भी प्रकार हैं उनकी तुलना में दृश्यकाव्य का प्रभाव सर्वाध्कि संवेदनात्मक होता है। इसके कई कारणें का उल्लेख किया गया है। दृश्यकाव्य अर्थात् नाटक में गीत, वाद्य, नृत्य, चित्राकला, स्थापत्यकला, वेश–विन्यास तथा अभिनयात्मक क्रियाएं एक साथ अपनी उपस्थिति से नाटक के मंच को प्रत्येक दर्शक के जीवन का मंच बना देते हैं। नाटक के इसी जीवन रूप को स्पष्ट करते हुए भरतमुनि ने लिखा है –

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विध न साकला

नासौ योगो न तत्कम्र नाट्यऽ्स्मिन् यन्न दृश्यते।।'

अर्थात् नाटक में लौकिक व्यावहाकिर जीवन का सामाजिक, धर्मिक कोई भी ऐसा ज्ञान नहीं है जो संप्रेषित न होता हो। नाटक का कैनवस अत्यंत विस्तृत है। जिस तरह से नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रित संबंध है उसी तरह से रंगमंच और अभिनय भी अभिन्न है। न जाने कब से रंगमंच के संदर्भ में अभिनय के कई शास्त्रा और सि(ांत निर्मित किए गए और आज भी किए जा रहे हैं। हमारे यहाँ भरतमुनि का नाट्शास्त्रा इस तथ्य का सबसे बड़ा प्रमाण है। इसके साथ ही पश्चिम की ओर अगर नज़र डालें तो आधुनिक समय में स्तानिस्लावस्की, ब्रेख्त, ग्रोतोवस्की आदि के अभिनय सि(ांतों की कापफी चर्चा रही है।

अभिनय क्या है? अगर इस प्रश्न पर विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि अवस्था, स्थिति–परिस्थिति, मनःस्थिति, भाव, विचार इत्यादि का किसी भी तरीके से, किसी भी कारण से किया गया अनुकरण अभिनय कहलाता है और इसे कर के दिखाने वाले को अभिनेता कहा जाता है। अभिनय वास्तव में असल जीवन की नकल है। हम इस संसार में जो कुछ भी देखते हैं, करते हैं उसी की नकल तो हम नाटक में प्रदर्शित करते हैं। इस नकल का प्रदर्शन ही तो वास्तव में अभिनय है। इस तरह से कहे जाने पर अभिनय अत्यन्त सरल प्रतीत होता है। किन्तु अपने वास्तविक रूप में अभिनय एक कठिन, जटिल और रहस्यमयी कला है क्योंकि जीवन के जिस यथार्थ सच को मंच पर प्रस्तुत किया जाता है वह यथार्थ और सच पहले की घटना होती है जिसे एक बार पिफर उसी रूप में घटित होते हुए दिखाया जाता है। पफलतः पिफर से एक ही घटना का सत्याभास होता हें यह सत्याभास होना ही वास्तव में अभिनय है और इस सत्य का आभास कराने वाला अभिनेता हे। अभिनेता द्वारा प्रस्तुत सत्याभास कितना ही स्वाभाविक सहज और सरल क्यों न प्रतीत हो, वह 'होता' नहीं 'किया' जाता है।

यह सच्ची बातों को नहीं बल्कि बातों के सच को प्रदर्शित करता हैं सच का आभास कराने वाला एक झूठ अथवा नकल एक जादू की तरह सामाजिक के हृदय में रच–बस जाता हें यह रचना–बसना अभिनय के माध्यम से ही होता है। अभिनय हकीकत या असलियत का झूठा सच है। बशीर बद्र के शब्दों में -

'यूं ज़िन्दगी के सीने से आँचल न खींचिए

सच्चाइयों में झूठ का कुछ पफन भी चाहिए।'

ज़िन्दगी की सच्चाइयों में झूठ मिलाने का यह बेमिसाल पफन ही अभिनय है। यहाँ रूठ से तात्पर्य सीध्े–सीध्े किसी को गलत बातों या वाक्पटुता से ध्ेखा देने से नहीं है बल्कि किसी और की ज़िन्दगी से अपनी ज़िन्दगी का तादात्य

ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

स्थापित कर दूसरे की ज़िन्दगी का स्वयं पर आरोप कर उसे सहृदयों के समक्ष प्रदर्शित कर आनंद प्रदान करना है। अतः यह झूठ, अभिनेता द्वारा किसी के व्यक्तित्व को अपने में मिलाकर उसका प्रदर्शन करने से अभिनेता के व्यक्तित्व का झूठ होता है, घटना या परिस्थिति का नहीं। साथ ही इस झूठे व्यक्तितव का स्वाभाविक प्रदर्शन अभिनेता की अभिनेयता का चरमोत्कर्ष होता है।

अभिनय मनुष्य के 'अस्तित्व की खोज' करता है। संवेदना की तलाश करता है। मानवीय गुणों को तलाशने का कार्य भी अभिनय कही करता है। मंच पर अभिनय करते हुए किसी के जीवन की संपूर्ण यात्राा अभिनेता ही करता है। अभिनेता मंच पर होकर भी नहीं होता और नहीं होकर भी होता ळे। वह संबंध्ति पात्रा को स्वयं में जीता है, महसूस करता है और अंत में दर्शकों को महसूस कराता है। मान जीजिए एक अभिनेता जिसका नाम 'सागर मल्होत्राा' है, जिसे 'दुष्यंत' का चरित्रा अभिनीत करता है। सागर मल्होत्राा मंच पर है पर मंच पर सागर मल्होत्राा होते हुए भी हीं है बल्कि वह दुष्यन्त है। यह होने और होते हुए भी न होने का जो रहस्य है - यही अभिनय को श्रेष्ठ कलारूप का दर्ज़ा देता है।

अपने जीवन में अगर हम झाँक कर देखें तो हम अपने जीवन को अपनी समग्रता में अकेले ही जीते हैं जबकि अभिनेता न जाने कितने लोगों के जीवन को अपने एक जीवन में जी लेता है। हर बार एक नया जीवन, नई घटना, नई परिस्थिति अपने आप में एक चुनौती है। क्योंकि प्रत्येक जीवन और घटना को अपने वास्तविक रूप में दर्शकों तक पहुंचाने का कार्य अभिनेता ही तो करता है। अपने एक जीवन में वह इतिहास के पन्नों में भी जा पड़ता है और वर्तकाल काल के पार आने वाले समय की भी संभावना तलाश कर लेता है। जो था, जो है और जो हो सकता है - अर्थात सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर काल के उस पर जाने का भी सामर्थ्य अभिनेता के पास ही होता है। और अपने इस टास्क में वह अपने स्वाभाविक अभिनय के द्वारा ही सपफल हो सकता है।

अभिनय कैसे किया जाए - यह अत्यन्त विवादित प्रश्न है, जिसका कोई अंतिम उत्तर है ही नहीं। अभिनय की तलाश स्वयं की तलाश है। अभिनय को खेजना स्वयं को खोजना है। स्वयं की तलाश और स्वयं की खोज होने के कारण सबसे पहले इसे स्वयं से ही खोजा जाना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य का अपना चाल–चलन, पहनावा और अभिव्यक्ति का अपना तरीका होता है। इसी तरह जब अभिनेता को किसी चरित्रा को अभिनीत करना होता है तो पहले वह स्वयं के तौर–तरीकों को देखे और उसी आधर पर चरित्रा के। पिफर अपने तौर–तरीकों को कुछ समय के लिए त्यागकर अपने चाल–चलन में, अपने पहनावे में, अपनी वाणी में चरित्रा के हाव–भावों को समाहित कर ले। अर्थात् उस चरित्रा को स्वयं पर आरोपित कर उसका अभ्यास करे और पिफर उसका स्वाभाविक प्रदर्शन करे। रंगमंच का जनतंत्रा में हृषीकेश सुलभ के शब्दों में प.... देह से सम्प्रेषित होता है अभिनय।ۚ किन्तु केवल किसी के देह की भावभंगिमा का आरोपरण ही अभिनय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जब तक इन भावभंगिमाओं को मन से भली–भांति समझा नहीं जाएगा तब तक तो किसी चरित्रा का बाहरी रूप ही प्रदर्शित हो पाएगा। संबंध्ति चरित्रा के भीतर के द्वंद्व और आंतरिक स्थिति को मंच पर दिखाने के लिए तो अभिनेय पात्रा को उसके मूल रूप में समझना और स्वयं में आत्मसात कर तब उसके बाहरी रूप का अभ्यास करना होगा। तब कहीं जाकर अभिनय अपने संपूर्णता को प्राप्त होगा। यथा - प्फदेह का भी महत्व है, पर सब कुछ उपजता है मन से, ... दिमाग की अवचेतना से उजपता है, पर चेतन दिमाग उसकी पृष्ठभूमि रचना है। अभिनय एक मूर्त माध्यम है, इसलिए देह तो होगी ही।" **(रंगमंच का जनतंत्रा, हृषीकेश सुलभ)**

अभिनय को चरम पर पहुंचाने का प्रमुख माध्यम **'अभिनेता की संवेदनशीलता'** है। अभिनेता किसी चरित्रा को तभी निभा पाएगा जब वह तीव्रता से उस चरित्रा की भावनाओं, सोचने के तरीके और ज़िन्दगी जीने के ढंग को ठीक से महसूस कर पाए। अगर अभिनेता अभिनेय पात्रा के जीवन की समग्रता को ठीक से महसूस नहीं करेगा तो सही दिशा में अभ्यास नहीं होगा, न ही वह उस चरित्रा के साथ सही न्याय ही कर पाएगा। ऐसे में वास्तविक चरित्रा के साथ न्याय नहीं हो पाएगा और अभिनय के आनंद में बाध उत्पन्न होगी।

संवेदनशीलता के पश्चात् अभिनेता को **'काल्पनिक'** भी होना चाहिए। अभिनेता जिस चरित्रा को अभिनीत कर रहा है, उससे संबंध्ति चरित्रा को कल्पित करने की शक्ति उसमें होनी चाहिए। जैसे कोई अभिनेता 'कृष्ण' का पात्रा अभिनीत कर रहा है तो पहले उसे कृष्ण की छवि मन में लानी चाहिए पिफर कल्पना में ही कृष्ण की सारी मुद्राओं और हाव–भावों को समझकर अपने चरित्रा पर आरोपित करना चाहिए। ऐसा करने से कृष्ण का जीवंत रूप वह अपने अभिनय में प्रस्तुत कर सकेगा।

अभिनेता द्वारा किया गया संबंध्ति चरित्रा का **अभ्यास और उसकी साध्ना** उसे अभिनय के शिखर तक ले जाती है। अभिनेता की समग्र साध्ना उसे एक ऐसे मार्ग पर ले जाती है जहाँ वह स्वयं को विभिन्न परिस्थितियों में छोड़ देता है, पिफर स्वयं ही देखता है कि वह अपने अंदर किस नवीन की उत्पत्ति कर पा रहा है या उसके अंदर क्या नया पनप रहा है। इन सारी चीज़ों को समग्रता में मिलाकर वह एक नवीन सृष्टि करता है। यह उसकी अपनी सर्जना हे जो उसने उस चरित्रा के लिए की है जिसे उसे मंच पर करना है। यह नवीन सज्रना ही हर एक अभिनेता की अपनी निध् िहै, जिसे वह मंच पर प्रस्तुत कर बाकी अभिनेताओं से स्वयं को अलग करता है। मान लीजिए दो अभिनेताओं को कृष्ण का चरित्रा अभिनीत करना है तो दोनों ही अभिनेता अपनी साध्ना में अलग–अलग तरह से कृष्ण की कल्पित छवि मन में लायेंगे। दोनों का अलग अनुभव, अलग सोच होगी और पफलतः दोनों का अभिनय भी अलग तरीके से ही होगा। यह बात यह साबित करती है कि अभिनय नित नीवन जीवन जीने की कला है, इतना ही नहीं यह एक जीवन को अलग–अलग तरीके से जीने की कल्पना है। अभिनय हमेशा जीवन के नवीन संदर्भों की तलाश करता है।

अभिनेता के अभिनय में गहराई, विविध्ता, जीवंतता हमेशा बनी रहनी चाहिए। इसके लिए उसे बराबर सतर्क रहना पड़ता है। एक भूमिका सपफलतापूर्वक निभाने के बाद नई भूमिका करते समय पुराना सब भुलाकर बिल्कुल नई दृष्टि से भूमिका पर काम करना आरम्भ करना पड़ता है। प्रसि(रंगकर्मी हेमा सिंह के अनुसार – " एक संवेदनशील अभिनेता को उस वक्ता ऐसा महसूस होता है कि वह जैसे पहली बार अभिनय कर रहा है। जैसे वह भूमिका एक चुनौती है और उस चुनौती का सामना वह पूरी निष्ठा से करता है। अपने शीरे, अपनी बुि(, अपनी भावनाओं और अपनी आवाज़ का भरपूर प्रयोग करता है ताकि वह एक नया मानदंड स्थापित कर सके। यह मानदंड अभिनेता को अपनी अभिनय क्षमता के लिए भी होता है और उस भूमिका के लिए भी जिसे वह मंच पर स्थापित कर रहा है। अभिनय के लिए कोई शॉर्ट–कट ;छोटा रास्ताद्ध नहीं हो सकता। जब–जब अभिनेता अपनी भूमिका को चलताऊ ढंग से निभाता है उसी पल से उसका अभिनय दर्शक को घिसा–पिटा लगने लगता है।" **(रंग प्रसंग पत्रिाका, अंक–6, संपादक प्रयाग शुक्ल)**

संवाद भी अभिनय का सशक्त माध्यम है। कई बार तो संवाद के माध्यम से ही अभिनेता की पहचान भी होने लगती हे। संवादों का सही

वाचन भी अभिनेता को अभिनय के चरम तक ले जाता है। नंदकिशोर आचार्य ने तो यहां तक कहा है कि µ फ्नाटक दृश्यकाव्य होने के साथ–साथ श्रव्य–काव्य भी है। शायद नाटक के इस तरह श्रव्य–काव्य होने की ही वजह से वाचिक को अभिनय का एक प्रकार माना गया है और वह न केवल अभिनय का प्रथम प्रकार है, बल्कि अभिनय के अन्य प्रकारों के विनियोग की दिशा भी निर्धतर–सी कर देता है।" **(रंग–प्रसंग, अंक–16, सं.प्रयाग शुक्ल)** यहाँ विनियोग से सीध तात्पर्य अभिनेता द्वारा संबंध्ति चरित्रा के जीवन के हर रूप, यथा - वाचिक, आंगिक सात्विक और आहार्य को जीवंत करना है। किसी चरित्रा को प्रदर्शित करने के लिए अभिनेता अभिनय के साथ–साथ विभिन्न संवादों को सहारा लेता है। ये संवाद ही अभिनेता के चरित्रा की सच्चाई को उजागर करने का सही मार्ग प्रशस्त करते हैं। संवादों की यही अदायगी ही अभिनेता को अभिनय के निकष तक ले जाती है। संवादों के भीतर उतरकर ही अभिनेता उन संवादों को जीता है और संवाद स्वतः ही अभिनेता के व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाते हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे संवाद उस अभिनेता के लिए ही गढ़े गए हों।

अभिनेता को अभिनय में संवेदनशीलता, कल्पना, सोच–समझ, साध्ना, अभ्यास के साथ–साथ संवादों की भी उचित अदायगी करना आना चाहिए। ताकि अभिनय का संवादों के साथ तादात्म्य स्थापित हो सके और सपफलत और स्वाभाविक अभिनय का प्रदर्शन हो पाए। इसके साथ ही अभिनेता के वस्त्रा और आभूषण भी अभिनेय चरित्रा के साथ मेल खाते हुए होने चाहियें अन्यथा नाटक के मूल कथ्य में बाध उत्पन्न हो जाएगी। अभिनय के इन चारों प्रकारों को स्वयं में समाविष्ट करके ही एक अभिनेता एक सपफलत अभिनेता बन पाता है और उसका अभिनय उत्कृष्ट अभिनय।

अस्तु, अभिनय एक निरंतर रचना–प्रक्रिया है, जीवंत है। कहा जा सकता है कि यह एक जीवन की तरह है जिसे लगातार जीते रहना होता है। जिस तरह हम निरंतर अपने जीवन को संवारने की कोशिश करते रहते हैं अभिनय को भी निरंतर संवारते रहना आवश्यक होता है। इसके लिए एक अच्छा अभिनेता हमेशा चैतन्य रहता है। खुद को प्रदर्शित करने के साथ–साथ वह दूसरे अभिनेताओं का भी प्रदर्शन देखता है। समाज में घटने वाली हर घटना से तार्रुपफ रखता है और घटना के हर चरित्रा में अपने को रखकर उस चरित्रा को स्वयं के अंदर जीने की कोशिश करता है। इस तरह अभिनय एक दोहरी यात्राा बन जाती है और अभिनेता उसका अकेला यात्राी।

संदर्भ :

1. रंगमंच का जनतंत्रा, हृषीकेश सुलभ
2. रंगप्रसंग, सं. प्रयाग शुक्ल (अंक 6)
3. रंगप्रसंग, सं. प्रयाग शुक्ल (अंक 16)

Copyright © 2015 Dr. Priyanka Mishra. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.